**ओ३म्**

**‘सन्ध्या व अग्निहोत्र यज्ञ का महत्व व लाभ’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 सन्ध्या एक शास्त्रीय विधान है जिसका अनुष्ठान प्रत्येक स्त्री व पुरुष का कर्तव्य है। शैशव काल से माता-पिता के सान्निध्य से इसका आरम्भ हो जाता है। गुरुकुल व विद्यालयों में बच्चे अपने आचार्य के सान्निध्य में इसे करते हैं और गृहस्थ व अन्य आश्रमों में रहते हुए इसे प्रातः व सायं दोनों समय बिना अवरोध व रूकावट करने का विधान हमारे प्राचीन वा आदिकालीन ऋषियों ने किया है। मृत्यु के अन्तिम दिन तक इस कर्तव्य को करना होता है। ऋषि दयानन्द एवं प्रमुख आर्य विद्वानों का जीवन भी इसका प्रमाण है कि उन्होंने मृत्यु के दिन तक इस कर्तव्य का पालन किया। सृष्टि की आदि में रचित मनुस्मृति में भी इसका वर्णन आता है और वहां विश्व के प्रथम विधिवेत्ता मनु महाराज विधान करते हैं कि जो मनुष्य दोनों समय सन्ध्या व यज्ञ आदि शुभ व करणीय कर्तव्यों को नहीं करता उससे द्विजों के सभी अधिकार छीन लेने चाहिये और उसे शूद्र कुल में प्रविष्ट करा देना चाहिये। यह किसी व्यक्ति के कर्तव्य न करने के कारण सबसे बड़ी सजा कही जा सकती है। वैदिक काल में यह नियम व कानून रहा है कि जब द्विजों को सन्ध्या व यज्ञ न करने के कारण दण्ड के रूप में उनका वर्ण परिवर्तन किया जाता था।

सन्ध्या क्या है? सन्ध्या का शाब्दिक अर्थ तो ईश्वर का भली भांति ध्यान करने को सन्ध्या कहते है। ध्यान का अर्थ है कि इसमें ईश्वर के स्वरूप का चिन्तन सहित उसके गुणों, कर्मों व स्वभाव पर विचार करते हुए उसके उपकारों का ध्यान व मनन करते हैं। ऐसा इस लिए करते हैं कि इससे अल्पज्ञ जीव को सर्वज्ञ ईश्वर का ध्यान व चिन्तन करने से अनेकानेक लाभ होते हैं। एक लाभ जीवात्मा के शुभ गुणों सहित उसका सामर्थ्य बढ़ता है। चिन्तन से ही मनुष्य बुद्धिमान बनता है और उसे कर्तव्य व अकर्तव्य का बोध होता है। ईश्वर के प्रति हमारे कर्तव्य क्या हैं, यह जानने के लिए हमें ईश्वर व उसके गुण, कर्म व स्वभाव पर विचार करना होगा। वेदों व वैदिक साहित्य सहित सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि का स्वाध्याय भी हमें ईश्वर के स्वरूप को जानने और अपने कर्तव्य निर्धारण करने में सहायक होता है। यदि हम ऐसा न भी करें तो भी इतना तो हम जानते हैं कि हमारी यह सृष्टि अपौरूषेय है अर्थात् यह मनुष्य वा मनुष्यों के द्वारा नहीं बनी है वा अस्तित्व में आई है। यदि संसार के सारे मनुष्य प्रयत्न भी करें तो भी इस ब्रह्माण्ड तो क्या एक ग्रह की भी रचना नहीं कर सकते। यह भी हमें ज्ञात है कि रचना करना चेतन सत्ता का गुण है। जड़ पदार्थ यथा पृथिवी, अग्नि, जल, वायु और आकाश आदि में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह अपने आप स्वयं का निर्माण व रचना कर सकें। अतः अब हमें तीसरी चेतन सत्ता की खोज करनी होगी जिसने इस जड़ व चेतन जगत अर्थात् प्राणी सृष्टि की रचना की है। सृष्टि की रचना स्वयं नहीं अपितु मनुष्य व जीवात्मा से बड़ी किसी अन्य सत्ता से हुई है, यह अनुमान होता है। सृष्टि में अनेक पदार्थों के विशिष्ट गुणों वा रचना विशेष को देखकर रचयिता का ज्ञान होता है। विचार करने पर ‘ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्ता एवं सबका उपासनीय, ध्यान, स्तुति व प्रार्थना करने योग्य सिद्ध होता है।’ ईश्वर का ऐसा स्वरूप ही वेद एवं वैदिक साहित्य में वर्णित है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि इस संसार और हमारे शरीरों की रचना व जन्म आदि ईश्वर के द्वारा ही हुआ वा हमें मिला है।

ईश्वर से हमें बिना मूल्भ्य दिए मिला हमारा यह शरीर कितना मूल्यवान है इसका अनुमान भी हम विचार व चिन्तन करके कर सकते हैं। एक तरीका यह भी हो सकता है कि हम अस्पतालों और वहां उपचाराधीन रोगियों पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। अस्पतालों में अनेक रोगों से पीड़ित लोग उपचाराधीन रहते हैं। उनसे बात करने पर ज्ञात होता है कि शरीर की किसी मामूली सी विकृति के उपचार पर उनका सहस्रों व लाखों रूपया व्यय हुआ परन्तु चिकित्सक फिर भी उस विकृति को पूर्णतया स्वस्थ नहीं कर सके। एक उदाहरण यह भी सुनते हैं कि एक सेठ की एक आंख खराब थी। उसे एक युवक मिलता है जो ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। बातचीत में युवक कहता है कि यदि ईश्वर है तो सब समान क्यों नहीं हैं? कोई इतना गरीब की रोटी नहीं और कोई इतना अमीर की उसके पास धन व स्वर्ण आदि से बड़े बड़े भवन भरे हुए हैं। सेठ ने पूछा कि तुझे यदि धन मिल जाये तो क्या ईश्वर को मान लेगा। उस युवक के हां कहने पर सेठ ने कहा कि तेरे पास दो आंखे हैं। एक आंख से काम चल सकता है। मेरी एक आंख नहीं है। बोल कितने हजार या लाख रूपये तुझे दूं तेरी एक आंख लेने के लिए। डाक्टर तेरी एक आंख ले लेंगे और मुझे लगा देंगे। मैं तुझे जो मूल्य कहेगा, दे दूंगा। अब उसका सिर चकराया और वह किसी भी कीमत पर सेठ को अपनी एक आंख देने को सहमत नहीं हुआ। सेठ ने कहा कि जब तू एक आंख ही लाखों रूपये की नहीं दे रहा है तो अपने शरीर की कीमत का अनुमान कर जो तुझे ईश्वर ने बिना मूल्य दे रखी है। उस युवक की समझ में सेठ की बात आ गई और वह ईश्वर को मानने लगा और उसके उपकारों के लिए उसका धन्यवाद करने लगा।

एक और प्रसिद्ध कथा ईश्वर के अस्तित्व को बताती है। एक नास्तिक पिता का आस्तिक पुत्र था। पिता ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे। एक दिन पिता आफीस गये तो पुत्र ने ड्राइंग कक्ष में लगी अपने दादा दादी का चित्र उतार कर छुपा दिया। पिता आफीस से आये तो उनका ध्यान चित्र के स्थान पर गया। चित्र न पाकर पुत्र को बुलाया और पूछा कि चित्र कहां हैं? पुत्र बोला कि कहीं चले गये होंगे। पिता ने यह स्वीकार नहीं किया और कहा कि चित्र कहीं नहीं जा सकते क्योंकि वह जड़ हैं। इस पर पुत्र बोला कि जब एक साधारण सा चित्र एक कमरे के भीतर आ जा नहीं सकते तो यह इतना बड़ा ब्रह्माण्ड अपने आप कैसे बन सकता है और चल सकता है। इससे पिता के नास्तिकता के विचार दूर हो गये और वह आस्तिक हो गया। हम सब को भी ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि व इस सृष्टि में उसके द्वारा भूमि व अन्य पदार्थ हमें निःशुल्क दिये हैं, उन पर विचार करना है और शास्त्राध्ययन कर उचित रीति से उसका ध्यान व उपासना करनी है जिससे हम कृतघ्ना के पाप से बच सकें।

ईश्वर का ध्यान व उपासना एक प्रकार से ईश्वर के हमारे ऊपर उसके असंख्य उपकारों के लिए धन्यवाद करने के समान है। हम उसके ऋणों को मूल्य देकर चुका तो नहीं सकते केवल विनम्रता व कृतज्ञता का भाव रखकर उसका धन्यवाद ही कर सकते हैं। यह काम लगभग एक घंटा प्रातः व एक घंटा सायं को बैठकर करना ही संन्ध्या कहलाता है। हमारा सौभाग्य है कि हमें ऋषि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा लिखी गई ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना की श्रेष्ठ विधि ‘पंच महायज्ञविधि’ उपलब्ध है। सभी को उसका अध्ययन करना चाहिये और उसके अनुसार संन्ध्या व उपासना करनी चाहिये। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से ही हमें ईश्वर के स्वरूप, उसके गुण, कर्म व स्वभाव सहित आत्मा व प्रकृति के स्वरूप व गुणों का ज्ञान भी हो जाता है। अतः ऋषि दयानन्द के प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश सहित इतर ग्रन्थों का भी अध्ययन करना मानों समुद्र में डूबकी लगाना व मोतियों का पाना है।

सन्ध्या की ही तरह दैनिक अग्निहोत्र करना भी मनुष्यों का कर्तव्य है। इसका कारण यह है कि हमारे कार्यों से वायु, जल व सृष्टि में प्रदुषण व अस्वच्छता होती रहती है। इसे दूर करने का उपाय स्वच्छ रहना, सफाई करना व प्रतिदिन प्रातः व सायं दैनिक अग्निहोत्र करना है जिसकी आज्ञा हमें ईश्वर ने वेदों में की हुई है। अग्निहोत्र यज्ञ करने से वायु व जल की शुद्धि होती है जिससे हम स्वस्थ रहने के साथ दीर्घायु होते हैं। अनेक रोग भी अग्निहोत्र करने से दूर होते हैं और स्वस्थ मनुष्य भावी जीवन में रोगों से बचा रहता है। एक छोटा सा यज्ञ करने से लाखों प्राणियों को लाभ होता है। लाखों प्राणियों को लाभ का पुण्य भी यज्ञकर्ता को मिलता है। यज्ञ करने की आज्ञा हमें वेदों में ईश्वर ने दी है और ऋषियों ने भी उसका विधान किया है। ईश्वर व अपने पूर्वज ऋषियों की आज्ञा का पालन हमारा कर्तव्य व धर्म है। इसका पालन करने से हम जन्म जन्मान्तरों में अनेक सुखों व कल्याण को प्राप्त होते हैं। यज्ञ के अनेक लाभ हैं। इससे जड़ व चेतन देवों का पूजन होता है। विद्वानों के साथ संगतिकरण होता है और दान देने व लेने से दोनों लाभान्वित होते हैं। शास्त्रकारों ने कहा है कि यज्ञ करने वाले को स्वर्ग अर्थात् सुखों की प्राप्ति होती है। अतः सभी को यज्ञ करना चाहिये। हमारा अनुमान है कि प्रातः व सायं यज्ञ करने वाला मनुष्य कर्म फल सिद्धान्त के अनुसार मृत्यु के बाद निश्चय ही श्रेष्ठ मनुष्य योनि में जन्म लेता है। अतः इहलोक एवं परलोक में सुख की इच्छा करने वाले मनुष्यों को यज्ञ अवश्य करना चाहिये।

इसी के साथ इस संक्षिप्त चर्चा को हम विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**